Shodh Sangam Patrika
E-ISSN: 3049-0707, Volume 2 | Issue 4 | (Oct – Dec 2025)

प्राचीन भारत में आर्थिक संगठन

सत्यम यादव
शोध छात्र, प्राचीन इतिहास विभाग
सदनलाल सांवलदास खन्ना महिला महाविद्यालय, प्रयागराज
(संघटक महाविद्यालय - इलाहाबाद विश्वविद्यालय, प्रयागराज)

सारांश

प्राचीन काल में आर्थिक संगठनों ने एक तरफ आर्थिक उद्देश्यों की पूर्ति की, तो दूसरी ओर व्यक्तिगत श्रेणियों तथा निकायों को सहकारिता की भावना सिखाई। इन संघों के कारण उत्पादन पर नियंत्रण रहा, वस्तुओं का मूल्य भी स्थिर रहे। यद्यपि आर्थिक संघ अपने संगठन तथा कार्य प्रणाली में स्वतंत्र थे, तथापि वे राज्य की राजनैतिक सत्ता पर अधिक दबाव डालने में असमर्थ थे। प्राचीन भारत में ऐसा कोई प्रमाण उपलब्ध नहीं होता है जब आर्थिक संगठनों ने राज्य को चुनौती दी हो। राज्य और समाज की अर्थव्यवस्था में भी आर्थिक श्रेणियाँ सहायता देती थी तथा नये व्यवसायियों को भी यथा सम्भव सहायता देती थी। राज्य अथवा समाज के आर्थिक हितों पर आघात पहुँचाने की सम्भावना पर ही राज्य श्रेणियों के कार्य में हस्तक्षेप करता था अन्यथा राज्य श्रेणियों के स्वायत्त अधिकारों का सम्मान करता था।

मुख्य शब्द: श्रेणी, निगम, पूग, अक्षयनीवि, पुराण

प्रस्तावना

भारतीय संस्कृति के आर्थिक क्रियाकलापों के उन्नति में पारस्परिक सहयोग तथा सामुदायिक सक्रियता का विशेष योगदान रहा है। सामुदायिक जनजीवन भारतीय संस्कृति में दृष्टव्य है और इस सामुदायिक जीवन का विकास व्यवसायिक एवं व्यापारिक संस्थाओं के माध्यम से सम्पन्न हुआ। प्राचीन काल में शिल्पी एवं व्यापारियों का अपना एक संगठन था, इस संगठन को आर्थिक संघ अथवा श्रेणी (गिल्ड) कहा जाता था। साहित्यिक स्रोतों से पता चलता है कि उत्तर वैदिक काल में श्रेणियों का संगठन प्रारम्भ हुआ। पाणिनी रचित अष्टाध्ययी, कौटिल्य के अर्थशास्त्र, बौद्ध जातक कथाओं एवं स्मृति ग्रंथों में इन श्रेणियों का विस्तार से उल्लेख हुआ है। कालान्तर में इनका वर्णन मुद्राओं एवं अभिलेखों से भी ज्ञात होता है। प्राचीन भारतीय साहित्य एवं अभिलेखों में इनके लिए श्रेणी, पूग, निगम आदि शब्दों का प्रयोग हुआ है। प्राचीन भारत के आर्थिक उन्नति में इन संस्थाओं ने अभूतपूर्व योगदान दिया।

शोध उद्देश्य

- प्राचीन काल में आर्थिक संगठनों की ऐतिहासिक पृष्ठभूमि यथा- उत्पत्ति, संगठन, विकास आदि का अध्ययन करना।
- आर्थिक संगठनों के स्वरूप को वैदिक, छठी शताब्दी ई0 पू0 के काल, मौर्य-मौर्योत्तर काल, गुप्त तथा पूर्वमध्य कालीन अवधियों में क्रमवार अध्ययन करना।
- आर्थिक संगठनों के उत्तरदायित्व का अध्ययन एवं मूल्यांकन करना।

शोध पद्धति

यह शोध शीर्षक ऐतिहासिक एवं विश्लेषणात्मक पद्धति पर आधारित है। इसके शोध सामाग्री के रूप में साहित्य एवं

अभिलेखों को शामिल किया गया है। इनका अध्ययन तथा विश्लेषण हमें शोध निष्कर्ष तक पहुँचने में सहायक हुए।

आर्थिक संगठनों की उत्पत्ति

यद्यपि आर्थिक गतिविधियों के प्रमाण हड़प्पा सभ्यता से प्राप्त होते है तथापि हम यह नही कह सकते की हड़प्पावासी किन संगठनों अथवा संस्थाओं द्वारा इस गतिविधि का क्रियान्वयन करते रहे होंगें। आर्थिक संगठनों की प्राचीनता ऋग्वैदिक काल तक मानी जा सकती है। ऋग्वेद में पणि नामक व्यापारियों का उल्लेख मिलता है। ये समूह बनाकर व्यापार के लिए जाते थे परन्तु अभी तक यह व्यापारिक समूह संस्थागत रुप नही ले पाया था। आर. सी मजूमदार का मानना है कि ऋग्वैदिक पणियों से श्रेणियों का आभास मात्र मान सकते है।[1] श्रेणी तथा गण जैसे शब्द का उल्लेख भी वैदिक साहित्य में प्राप्त होते है जिनसे हम श्रेणी प्रमुख तथा निगम का अनुमान लगा सकते है। उक्त विवरणों से हम भारत में आर्थिक क्षेत्र में सामुदायिक प्रक्रिया का प्रारम्भ मान सकते है।

श्रेणी का स्वरूप एवं संगठन

जातक ग्रंथों तथा अन्य समकालिक ग्रन्थों में अनेक वृत्ति अपनाने वाले श्रेणियों का उल्लेख है जिनकी संख्या 18 या उससे अधिक है- बढ़ई, लोहार, स्वर्णकार, पत्थर का काम करने वाले, जुलाहे या बुनकर, चर्मकार, कुम्हार, रंगरेज, मछुआरे, कसाई, शिकारी या बहेलिये, नाई, मालाकार, विडलकारी, चित्रकार, कसकर, धानिक आदि तथा कुछ के निवास स्थान के लिए शब्दावली दी गई है जैसे- दन्तकारवीथि (हाथी दांत का काम करने वाले का निवास स्थान) उप्पलवीथि (कमल बेचने वालों का स्थान) रजकवीथि (धोबियों का निवास स्थान) आदि।[2]

श्रेणियाँ अध्यक्ष के नेतृत्व में संगठित होकर अपना कार्य करती थी। अध्यक्ष प्रमुख के लिए जेठ्ठक (जेष्ठक) अथवा सेठ्ठि (श्रेष्ठि) शब्द मिलता है। प्रारम्भ में श्रेष्ठि गांवों में निवास करता था परन्तु जब समृद्धशाली नगरों का विकास हुआ तो उसके कार्यक्षेत्र में नगर भी शामिल हो गये। अतः अब उसे नगरश्रेष्ठि कहा जाने लगा। इनका अपना कार्यालय होता था जिसे सेठ्ठित्थान (श्रेष्ठि स्थान) कहा जाता था। इनका चुनाव इनकी सम्पत्ति तथा प्रभाव के आधार पर होता था, कभी-कभी इनका चुनाव राजा भी करता था। धम्मपद अट्ठकथा से ज्ञात होता है कि श्रावस्ती के सेठ्ठि आनन्द की मृत्यु के बाद राजा ने उसके पुत्र मूलश्री को नगर सेठ्ठि बनाया था। इसप्रकार नगर सेठ्ठि के पद की वंशानुगत होने का पता चलता है तथा इसकी नियुक्ति में राजा की महत्वपूर्ण भूमिका स्पष्ट होती है। श्रेष्ठि शासन तथ व्यापारियों दोनों का प्रतिनिधित्व करता था। श्रेष्ठि राजा को व्यापार-वाणिज्य के मामलों में सलाह भी देता था।

आर्थिक संगठनों की परिभाषा

श्रेणी

अर्थशास्त्र में शिल्पकारों के समूह को श्रेणी कहा गया है तथा इसके अन्तर्गत कृषि, व्यापार तथा सैनिक कार्य करने वाले लोगों की सहकारी संस्था को भी शामिल कर लिया गया है। महाभारत में श्रेणी का प्रयोग व्यापारियों के संगठन के लिये किया गया है। कय्यट तथा विज्ञानेश्वर ने एक ही प्रकार के शिल्प अथवा व्यवसाय करने वाले समूहों को श्रेणी की संज्ञा प्रदान की है।[3]

एकेन शिल्पेन पण्येन वा ये जीवन्ति तेषां समूहः श्रेणी। (कय्यट 2, 1, 5-6)

निगम

व्यापारियों के संघ की विशिष्ट संज्ञा निगम थी। यह व्यापारियों का ऐसा संगठन था जो स्थायी रुप से एक ही नगर में रहकर व्यापार करते थे। अमरकोश में निगम का प्रयोग नगर के लिए तथा नैगम का प्रयोग व्यापारी तथा नागरिक दोनों

के लिए मिलता है। अतः निगम संभवतः नगर के व्यापारियों के हितों की देख-रेख करने वाली संस्था प्रतीत होती है।

पूग

मितक्षरा के अनुसार नगर अथवा ग्राम में रहने वाले विभिन्न जातियों तथा व्यवसायों के संघ को पूग कहा जाता था।[4] (पूगाः वर्ग समुहाः भिन्न जीतानां भिन्न वृत्तानामेकस्थान निवासिनां यथा ग्राम नगरादयः) वीर मित्रोदय में हाथी और अश्व के माध्यम से चलने वाले को पूग कहा गया है।[5] (पूगाः हस्त्यश्वारोहादयः) इसप्रकार जहाँ श्रेणी विभिन्न स्थानों के व्यापारियों एवं व्यवसायियों के हितों का प्रतिनिधित्व करती थी वहाँ पूग स्थानीय व्यापारियों के हितों की प्रतिनिधि संस्था थी तथा निगम केवल एक नगर के व्यापारियों के हितों की प्रतिनिधित्व करती थी।

श्रेणियों का विकास

श्रेणियों का पूर्ण विकास उत्तर वैदिक काल में राजतंत्रों की स्थापना के बाद दिखलायी पड़ता है। वैश्य वर्ण के लोग मुख्यतः कृषि, पशुपालन, व्यापार-वाणिज्य आदि किया करते थे। राजकीय करों के वे मुख्य दाता थे। जातक ग्रंथ से पता चलता है कि उन्हें कभी-कभी अतिरिक्त करों का भार वहन करना पड़ता था। अतिरिक्त करों से बचने के लिए वे अपना निवास स्थान बदलने के लिए मजबूर हो जाते। अतः अपने हितों की रक्षा हेतु उन्होने एक विशेष संगठन बनाना उपयुक्त समझा होगा। इन संगठनों का गठन एवं नियम विधान स्वाभाविक एवं शान्तिपूर्ण रहा होगा और कालान्तर में शासकों एवं धर्मशास्त्रों में उन्हे मान्यता प्रदान किया गया तथा समाज के आर्थिक विकास में उनकी उपादेयता स्वीकार कर लिया गया।

श्रेणियों के उद्भव का एक अन्य कारण छठी शताब्दी ई0 पू0 के काल में व्यापार तथा उद्योग-धन्धों का स्थानीयकरण रहा। छठीं शताब्दी ई0 पू0 तक आते-आते व्यापार-वाणिज्य के क्षेत्र में अभूतपूर्व प्रगति हुई। अतः उत्पादन और वितरण की समुचित व्यवस्था करने वाले संगठनों की आवश्यकता हुई। समाज में सेठ्ठि (श्रेष्ठि) वर्ग का उदय हुआ। इसप्रकार व्यापार उद्योग में पूँजी निवेश की आवश्यकता ने भी श्रेणियों के उद्भव में योगदान दिया। वृहस्पति ने यह संकेत किया है कि चोर, डाकुओं तथा अन्य आपदाओं से व्यवसाय की सुरक्षा एवं सामूहिक लाभ प्राप्त की इच्छा ने श्रेणियों के उद्भव में सहयोग दिया।[6]

ग्राम श्रेणि गणानां च संकेतः समयक्रिया

बाधाकाले तु सा कार्या धर्मकार्ये तथैव च।।

चाटचौरभयेवाधाः सर्वसाधारणाः स्मृताः

तत्रोपशमनं कार्य सर्वेनैकेन केनचित्।। (वृहस्पति स्मृति 17, 5-6)

आर. सी. मजूमदार ने भी श्रेणियों के उदय का मुख्य कारण डाकुओं से सुरक्षा बताया है। प्राचीन काल में व्यापारिक मार्ग असुरक्षित थे तथा व्यापारी प्रायः चोर, डाकुओं का शिकार हो जाते थे। अतः उन्होने अपने सार्थ (कारवाँ) बनाये। इसके अध्यक्ष को सार्थवाह कहा जाता था।

ई0 पू0 200 से 300 ई0 के बीच में व्यापारी और शिल्पी संघ तथा श्रेणी में संगठित हो चुके थे। मिलिन्दपन्हो में इनकी लम्बी सूची प्राप्त होती है। राज्य की ओर से इन श्रेणियों को कई विशेषाधिकार एवं स्वायत्तता प्राप्त थी एवं आर्थिक तथा सामाजिक जीवन दोनों में इन श्रेणी समूहों की भागीदारी थी। ये श्रेणियाँ बैंक का कार्य करती थी। श्रेणियाँ अपने पास अक्षयनीवि दान राशि जमा करती थी उनके ब्याज द्वारा दानकर्ताओं की अपेक्षाओं की पूर्ति करती थी। उदाहरणस्वरूप नासिक में गोवर्धन नामक स्थान से प्राप्त नहपान कालीन अभिलेख से सूचना मिलती है कि कुछ

बौद्ध उपासकों ने श्रेणियों के अन्तर्गत कुछ राशि जमा कर रखी थी ताकि उस रकम के ब्याज से बौद्ध भिक्षुओं की आवश्यकता पूरी हो सके अर्थात ब्याज की राशि से उन्हें आवश्यक वस्तुएँ मुहैया करायी जा सके।

ब्याज की दृष्टि से नहपान कालीन उषावदात (ऋषभदत्त) का नासिक लयण अभिलेख महत्वपूर्ण है जिसमें क्षहरात्र राजा क्षत्रप नहपान के दामाद दीनीकपुत्र उषावदात (ऋषभदत्त) के द्वारा दान का उल्लेख है। इस दान के अन्तर्गत 2 हजार कार्षापण कोलिक श्रेणी जो चीवर तथा कूशणमूलक (संभवतः किसी प्रकार का वस्त्र) बनाती थी, के पास अक्षयनीवि के रूप में जमा किया गया। इस पर ब्याज की दर 1 प्रतिशत मासिक अर्थात 12 प्रतिशत वार्षिक था वहीं 1 हजार कार्षापण दूसरी कोलिक श्रेणी को जो मात्र चीवर बनाती थी, के पास अक्षयनीवि के रूप में जमा किया गया था, इस पर ब्याज की दर 3/4 प्रतिशत मासिक था, अर्थात 9 प्रतिशत वार्षिक।[7] ''ये 1000 वधि पा यू न प डिक शत एते च काहापणा अपडिदातवा वधि भोजा एते चिवरिक सहस्त्राणि बे 2000 ये पडिके सते''।

कुछ ऐसा ही उदाहरण मथुरा से प्राप्त हुविष्क के अभिलेख में दो श्रेणियों के पास अक्षयनीवि दान के रूप में धन जमा किया गया था। इसमें एक श्रेणी समितकर जिसके पास 550 पुराण तथा दूसरे का नाम अभिलेख मे मिट चुका है उसमें भी 550 पुराण की राशि जमा की गई। समितकर श्रेणी जौ, गेंहूँ आदि पीसने का कार्य करती थी वहीं दूसरी श्रेणी संभवतः अनाज व्यापारियों की थी। अभिलेख में इस राशि पर ब्याज दर का कोई उल्लेख नहीं है।[8] ''अक्षय-निवि दिन्ना .....रा क-क्षेणीये पुराण-शत् 500{+}50 समितकर श्रेणी- {ये च} पुराण-शत 500{+}50''।

ईश्वरसेन के नासिक अभिलेख में त्रिरश्मि पर्वत की चार श्रेणियों की चर्चा आती है। लेख में अक्षयनीवि राशि के ब्याज से प्राप्त होने वाले धन को गोवर्धन स्थित बौद्ध भिक्षुओं के भोजन वस्त्र और चिकित्सा में खर्च किया जाय। लेख में 2 हजार कार्षापण ओदयंत्रिक श्रेणी, 1 हजार कार्षापण कुलरिक श्रेणी, 5 सौ कार्षापण तिलपिशक श्रेणी के पास जमा किये जाने का उल्लेख है।

कुलरिक श्रेणी को वुह्लर महोदय ने कुलालों (कुम्हारों) की श्रेणी होने का अनुमान लगाया है वहीं भण्डारकर महोदय ने कुलरिक को कौलिक (जुलाहों) की श्रेणी होने की कल्पना की है। उनकी यह कल्पना उसी विहार में लयण संख्या 12 में वर्णित कोलिक श्रेणी के उल्लेख के आधार पर किया गया है। तिलपिशक श्रेणी से आशय तेल पेरने अथवा बेचने वाले श्रेणी से है वहीं ओदयंत्रिक श्रेणी को सेनार्ट महोदय ने जल यंत्र अथवा घड़ी यंत्र बनाने वाले कारीगरों की श्रेणी कहा है जबकि परमेश्वरी लाल गुप्त के अनुसार यह धान कूटन वाली श्रेणी थी। ये श्रेणियाँ विहार के भिक्षुओं को भोजन सामाग्री वस्त्र व चिकित्सकीय सुविधाएँ उपलब्ध कराते थे।[9]

गुप्तकाल में भी उद्योगों की उन्नति का श्रेय तत्कालीन श्रेणियों तथा निगमों को था। दामोदरपुर ताम्रपत्र में नगर श्रेष्ठि (व्यापारिक संस्था का मुख्या सेठ) तथा सार्थवाह का उल्लेख है। यात्रा करने वाले पंथों का समूह 'सार्थ तथा इसका प्रमुख सार्थवाह कहलाता था।[10] (पान्थान् वहति सार्थवाहः। अमरसिंह रचित अमरकोश)

कुमारगुप्त प्रथम के मंदसौर लेख में लाट से आने वाले तथा दशपुर में स्थायी रूप से स्थित शिल्प श्रेणी यानी रेशम के व्यापारियों का वर्णन मिलता है जिसने वहाँ सूर्य मंदिर का निर्माण किया था।

''शिल्पावाप्तैर्द्धन समुदयैः पटद्वायैरुदारं।

श्रेणीभूतैः भवनमतुलं कारितं दीप्त-रश्मेः।।''

मंदसोर प्रस्तर अभिलेख, मालव संवत 493, श्लोक 16-17,

मंदसौर लेख से विदित होता है कि श्रेणी लाट देश (गुजरात) से दशपुर (मंदसौर, मालवा) में आकर कार्य करने लगी

और इसके सदस्य नाना प्रकार के गुणों के लिए प्रसिद्ध थे। दशपुर के रेशम के बारे में पंक्तियाँ है कि यौवन एवं कांति से युक्त होने पर भी सोने के हार, ताम्बूल, पुष्पधारण आदि से अलंकृत होते हुए भी स्त्रियाँ एकान्त में अपने प्रियजनों के पास नही जाती, जब तक कि दशपुर में निर्मित रेशम के दो वस्त्र (साड़ी और चादर) नहीं धारण करती। स्पर्श करने में कोमल, अनेक रंगों से चित्रित तथा आकर्षक दशपुर के रेशमी वस्त्रों से सम्पूर्ण पृथ्वी अलंकृत है।

तारुण्य कान्त्युपचितोऽपि सुवर्ण हार ताम्बूल पुष्पविधिना समलंकृतोऽपि।

नारी जनः प्रियमुपैति न तावदग्रंथा यावन पट्टमय वस्त्र युगानि धत्ते।।

स्पर्शवतावर्ण्णांतर विभाग चित्रेण नेत्र सुभगेन।

यैस्सकलमिदं क्षितितलमलंकृतं पट्टवस्त्रेण ।।

मंदसोर प्रस्तर अभिलेख, मालव संवत 493, श्लोक 11-12

मंदसौर प्रशस्ति में वर्णन आता है कि लाट प्रदेश से आकर दशपुर में बसने वाले शिल्पी समाज के विभिन्न वर्ग से संबद्ध थे और सभी श्रेणी के सामूहिक नियमों का पालन करते थे। वत्सभट्टि ने सदस्यों के गुणों तथा विशिष्ट कार्यों की निपुणता का वर्णन किया है जिनमें से कुछ संगीत विधा में निपुण थे, कुछ धनुर्विधा में प्रवीण, कुछ कथावाचक, कुछ रेशमवस्त्र बुनने में निपुण, कुछ ज्योतिषशास्त्र के ज्ञाता, तथा कुछ धर्मशील थे। पट्टवाय श्रेणी के दशपुर में निवास एवं उनके कार्यों से यह नगर वैभवपूर्ण हो गया। इस नगरी की सुंदर वाटिकाओं, गगनचुम्बी अट्टालिकाओं तथा मदमस्त गजेन्द्रों का रमणीय वर्णन वत्सभट्टि ने किया है।[11]

प्रासाद मालाभिरलंकृतानि धरां विदार्यैव समुत्थितानि।

विमान माला सदृशानि यत्र गृहाणि पूर्णेन्दुकरामलानि।।

(मंदसोर प्रस्तर अभिलेख, श्लोक संख्या 7)

गुप्त सम्राट स्कन्दगुप्त के इंदौर ताम्रपत्र में तैलिक श्रेणी ('इन्द्रपुर निवासिन यास्तैलिक श्रेण्या', इंदौर ताम्रपत्र, पंक्ति 8) का विवरण मिलता है जिसने सूर्य मन्दिर के दीप-दान निमित्त दो पल तेल दान दिया करता था।[12] (देयं तैलस्य तुल्येन पलद्वयं तु पंक्ति 10)

पूर्वमध्य काल में आर्थिक श्रेणियों ने तत्कालीन आर्थिक जीवन में अत्यधिक महत्वपूण भूमिका निभाई है। बाण तथा ह्वेनसांग के विवरण से पता चलता है कि हर्ष के शासन काल में आर्थिक संघ उद्योग, व्यापारियों, श्रमिक संगठनों मे के रुप में थे। पूर्वमध्य काल तक श्रेणियाँ बैंकिंग कार्य प्रणाली को प्राथमिकता देते हुये दिखायी देती है। राष्ट्रकूटों, चोलों के अभिलेख में श्रेणियों द्वारा जमा अक्षयनीवि का उल्लेख मिलता है। 912 ई0 के सियदोनी उत्कीर्ण लेख में नागक नामक व्यक्ति द्वारा मदिरा बनाने वालों के पास 1350 श्री मदादिवरादम्मो नामक मुद्राओं के निवेश का उल्लेख है। नवीं दसवीं शताब्दी ई0 के दक्षिण भारतीय अभिलेखों से विदित होता है कि ग्राम सभाएँ धार्मिक कार्यों के लिए धन को न्यास के रुप में लेती थी।[13]

आर्थिक संगठनों के कार्य

श्रेणी संगठनों का कार्य मात्र आर्थिक क्षेत्र तक सीमित नही था अपितु सामाजिक, धार्मिक एवं लोक कल्याण के कार्यों को भी सम्पन्न करना था। संगठनों का मुख्य कार्य व्यापार, उद्योग और व्यवसायों को संगठित और उन्नतशील बनाना था।

आर्थिक कार्य

आर्थिक क्षेत्र में वे देश के व्यापार-वाणिज्य एवं व्यवसाय का संचालन करते थे। क्रय-विक्रय की वस्तुओं पर वे दृष्टि रखते थे तथा बाजारों के मूल्य निर्धारित करते थे। श्रेणियों के सदस्य आर्थिक दृष्टि से अत्यन्त समृद्ध होते थे। श्रावस्ती के अनाथपिण्डक तथा कौशाम्बी के घोषित जैसे नगर श्रेष्ठि करोड़पति थे। श्रेणियाँ बैंकों का कार्य भी करती थी, इस रूप में वे अपने सदस्यों से धनराशि प्राप्त करते तथा ब्याज सहित उसे वापस करते थे। ऋण देने का आधार क्या था? इसकी ठीक-ठीक जानकारी हमें उपलब्ध नही है परन्तु ऐसा प्रतीत होता है कि श्रेणियों को जिसके ऊपर विश्वास होता था, उसी को ऋण देती थी।

मुद्रा, मुहर निर्गत कार्य

अर्थव्यवस्था को गति प्रदान करने के उद्देश्य से श्रेणियाँ अपनी मुद्राएँ जारी करती थी। तक्षशिला, नालन्दा, कौशाम्बी, वैशाली (बसाढ़) तथा प्रयागराज (भीटा) आदि से श्रेणियों की मुद्राएँ प्राप्त हुई है। तक्षशिला से तीसरी शताब्दी ई0 पू0 प्राप्त मुद्रा पर नैगम शब्द उत्कीर्ण है। मुद्राओं के अलावा मुहरों का प्रयोग भी श्रेणियाँ करती थी। प्रयागराज भीटा के उत्खनन में मार्शल को मुहर का सांचा प्राप्त हुआ है जिस पर मौर्यकालीन ब्राह्मी में सहजाति निगमस अंकित है। वैशाली से प्राप्त 274 गुप्तकालीन मुहरे प्राप्त हुई। इन पर श्रेणी सार्थवाह कुलिक निगम, श्रेष्ठिकुलिक शब्द अंकित है।[14]

धार्मिक एवं लोक कल्याणकारी कार्य

श्रेणियों द्वारा धार्मिक तथा लोक कल्याण के कार्य भी समय-समय पर सम्पन्न किये जाते थे। श्रेणियों ने धार्मिक कार्यों की देखभाल के लिए एक अलग विभाग ही खोल दिया था जिसका सर्वोच्च पदाधिकारी न्यायरक्षक कहलाता था। न्यायरक्षक नवीन मन्दिरों का निर्माण एवं पुराने मन्दिरों का जीर्णोद्धार करते थे, बौद्ध मठों का निर्माण कराते तथा बौद्ध भिक्षुओं को प्रत्येक वर्ष वस्त्र बनवाते थे।[15] वृहस्पति के अनुसार श्रेणियाँ सभागृह, यात्रियों के लिए विश्रामगृह, सरोवर खुदवाना, उद्यान लगवाना आदि कार्यों में भी सहभागिता करती थी। दुर्भिक्ष अथवा आर्थिक संकट के समय वे राज्य की सहायता करती थी।

न्यायिक कार्य

प्राचीन भारत में श्रेणियाँ स्वयं कानून बनाती थी परन्तु इसका कानून केवल आर्थिक गतिविधियों से ही सम्बन्धित था। राजा द्वारा इन कानूनों को मान्यता प्राप्त था। उनके अपने न्यायालय होते थे। ये अपने सदस्यों के आपसी विवादो का फैसला तथा अपराधी होने की स्थिति में दण्ड लगा सकते थे। नारद ने श्रेणी का स्थान चार सामान्य न्यायालयों में दूसरा बताया है। याज्ञवल्क्य ने इनमें कुल, श्रेणी तथा पूग की गणना की है। वृहस्पति ने भी इनका उल्लेख किया है, उनके अनुसार कुल न्यायालय के विरूद्ध श्रेणी न्यायालय में तथा श्रेणी न्यायालय के विरूद्ध पूग न्यायालय में अपील की जा सकती है। धर्मशास्त्रों में इस बात पर बल दिया गया है कि इन न्यायालयो के निर्णय का कार्यान्वयन शासन द्वारा कराना चाहिए।

सैन्य कार्य

श्रेणियों की समृद्धि तथा प्रतिष्ठा में वृद्धि के साथ-साथ सैन्य व्यवस्था का स्वरूप भी विकसित हुआ, आगे चलकर उन्हें सैन्य बल की अनुमति प्राप्त हो गई। सैनिकों को मासिक वेतन दिया जाता था। अर्थशास्त्र में श्रेणी बल का उल्लेख मिलता है। कौटिल्य ने श्रेणी बल को सैनिकों के उस वर्ग में रखा है जो शत्रुओं के आक्रमण को रोकने के लिए बना होता था। सेना के बल पर श्रेणियाँ अपनी सुरक्षा करती थी तथा समय पड़ने पर राजा को भी सैनिक सहायता उपलब्ध

कराती थी। मन्दसौर लेख से ज्ञात होता है कि श्रेणी सदस्यों में से कुछ धनुर्विद्या में प्रवीण थे जिनकी धनुष की प्रत्यंचाओं की ध्वनि सुखद थी।

निष्कर्ष

उपर्युक्त विवेचन से स्पष्ट हो जाता है कि तत्कालीन समाज में श्रेणियों का बड़ा महत्व था। यदि ये कहा जाय तो कोई अतिश्योक्ति नहीं होगा कि श्रेणियाँ राज्य की रीढ़ की हड्डी के समान थी। श्रेणियों द्वारा धार्मिक कार्यों में योगदान, मूल्य में वृद्धि न होने देना, उत्पादन शक्ति को विकसित करना, श्रमिकों का स्तर बनाये रखना, दीन-दुखियों और गरीबों की सहायता करना आदि के कारण समाज की स्थिति में अत्यधिक सुधार हुआ होगा। निः सन्देह प्राचीन भारत में आर्थिक संगठनों का स्थान महत्वपूर्ण था। प्राचीन भारतीय आर्थिक संगठनों की उपादेयता वर्तमान संदर्भ में लघु व कुटीर उद्योग, हस्तशिल्प जैसे कार्यों के लिए उपयोगी सिद्ध हो सकते है। इन संरचनाओं के माध्यम से संगठित, गुणवत्ता आधारित और कौशल केन्द्रित अर्थव्यवस्था को विकसित किया जा सकता है।

सन्दर्भ

1. मजूमदार. आर. सी (1922 द्वितीय संस्करण) कारपोरेट लाइफ इन ऐन्शेट इण्डिया, द ओरिएण्टल बुक एजेन्सी, पूना, पृष्ठ 2
2. पूर्वोक्त, पृष्ठ 18-19
3. कय्यट 2, 1, 5-6
4. मितक्षरा, 2.31
5. शोध पत्र, प्राचीन भारतीय इतिहास में श्रेणी संगठन की भूमिका, फरवरी 2019 वाल्यूम 6, पृष्ठ 419
6. वृहस्पति स्मृति 17, 5-6
7. ई. सेनार्ट, नासिक केव इन्सक्रिप्शन्स, इन्सक्रिप्शन्स संख्या 12, एपिग्राफिया इण्डिया, जिल्द 7, पृष्ठ 82
8. गुप्त, पी. एल (2014 सप्तम संस्करण) प्राचीन भारत के प्रमुख अभिलेख, विश्व विद्यालय प्रकाशन, वाराणसी, भाग 1, पृष्ठ 158-162
9. पूर्वोक्त पृष्ठ 208-211
10. अमरसिंह रचित अमरकोश
11. वाजपेयी, के. डी (2018 तृतीय संस्करण) ऐतिहासिक भारतीय अभिलेख, पब्लिकेशन स्कीम, जयपुर, पृष्ठ 172-178
12. उपाध्याय, वासुदेव (1974 प्रथम संस्करण) गुप्त अभिलेख, बिहार हिन्दी ग्रन्थ अकादमी, पटना, पृष्ठ 161 एवं कार्पस इन्सक्रिप्शन्स इण्डिकेरम, पृष्ठ 80
13. श्रीवास्तव, पी. सी (2005) प्राचीन भारतीय इतिहास एवं संस्कृति, के. यू पब्लिकेशन, कानपुर, पृष्ठ 272-273
14. श्रीवास्तव, के. सी (2015 संशोधित संस्करण) भारत की संस्कृति, यूनाइटेड बुक डिपो, इलाहाबाद, पृष्ठ 214
15. पूर्वोक्त श्रीवास्तव, पी. सी, पृष्ठ 27